भारत में राजनीति एवं नारी सशक्तिकरण:स्वभाव बनाम पोषण

डॉ. शेफालिका सिंह,
(अतिथि सहायक प्रोफेसर),
बाबा साहेब भीमराव अंबेडकर विश्वविद्यालय
लखनऊ

अधिकांश इतिहास के लिए नारी अज्ञात थी– वर्जिनिया वुल्फ

यहा इस बात पर प्रकाश डाला गया हैं, कि विभिन्न राज्यों में अन्तर व्यक्तिगत सम्बन्धो से लेकर, सामाजिक सगठनों तथा संस्थाओ तक, एक निश्चित ढंग से राजनीति में होने वाली लैंगिक भूमिकाओं तक व्यक्तियों की वैचारिक धारणा को नारीत्व एवं पुंसत्व कैसे प्रभावित करते हैं। यह वह वैचारिक धारणा हैं जिसने सशक्तिकरण की धारणा को प्रति अन्तर्ज्ञानात्मक तथ्य के रूप में विकसित किया हैं। भारत के मामले में, यद्यपि महिलाओं की भूमिकाओं में परिवर्तन हुए हैं, सशक्तिकरण की यह धारणा स्वभावतः अधिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक हैं।

सशक्तिकरण की धारणा

सशक्तिकरण अस्पष्ट या सामान्य रूप से एक व्यक्ति या समूहों को राजनीतिक, सामाजिक अथवा आर्थिक शक्ति स्वीकृत करने के रूप में परिभाषित किया जा सकता हैं। यह एक दूसरे व्यक्ति या व्यक्तियों को व्यक्तिगत शक्ति की खोज करने या उस पर अधिकार जताने में सहयोग करने की प्रक्रिया हैं।

अतः सामाजिक समानता को निश्चित करने के लिए नारी सशक्तिकरण आवश्यक हैं। जब सामाजिक समानता की बात की जाती है तो नारी सशक्तिकरण का स्थानापन्न कुछ नहीं हैं। जो भी हो ,नारी को सशक्त करने के लिए कोई कार्य विविध पहलुओं की घरेलू भावना का प्रतिबिम्ब और साथ ही सामाजिक–आर्थिक एवं राजनैतिक निर्माण का परिचय करने हेतु संविधान में विश्वास व्यक्त कराना हैं।

सशक्तिकरण क्यॉं आवश्यक है ?

भारत जैसे देशों को विकसित करने में सशक्तिकरण का विचार वही उपयोगिता एवं अत्यंत महत्व रखता हैं। ऐसा इसलिए हैं क्योंकि भारत जैसे देश निश्चित कारको द्वारा चित्रित किये जाते हैं। जो स्त्रियों के लिए विशेषरूप से हैं। यहा सांकृतिक केंद्र पुंसत्व हैं और नारी शिक्षा निम्न तथा सशक्त पैत्रिक और सामुदायिक महत्व के साथ स्त्रियों की सार्वजनिक क्षेत्र में लूप्तता रही हैं। ऐसी विशेषताओ ने महिलाओ को अयोग्य बना दिया हैं। जिससे की प्रतिस्पर्धा बनाने के लिए स्वयं को संसाधन एवं अवसर सुलभ करने हेतु पर्याप्त शक्ति अर्जित करने के लिए दृढ़तथा सशक्त कदम नहीं उठा सकतीं। इसलिए शिक्षा ,राजनीति, कार्यस्थल और ऐसे क्षेत्रों का स्त्रिलिंगीकरण नारियों के लिए दूरस्थ स्वप्न रह गये हैं। चाहे जैसे भी हो धीरे–धीरे सशक्तिकरण की प्रक्रिया वाह्य हस्तक्षेप एवं संस्था सम्बन्धी जोर के द्वारा संभो बनाई गयी हैं। परन्तु प्रश्न उठता हैं कि इसने सहीशाब्दिक अर्थ में कहाँ तक सशक्तिकरण स्वीकृत किया हैं ? कहाँ तक

रचनात्मक या निर्माणात्मक व्यवस्था में, जिनका निर्गम संस्कृति से होता हैं, नारियों के स्वतंत्रतापूर्वक कार्य करने में अब भी व्यवधान का कार्य करती हैं।

विश्वस्तरीय शिखर वार्ता

सशक्तिकरण की धारणा पर संस्थात्मक एवं वाह्य हस्तक्षेपों के सम्बन्ध में ,सामाजिक विकास के लिए 6 से 12 मार्च तक 1995 में संपन्न विश्वशिखर वार्ता से सम्बंधित दस्तावेजों पर एक बार दृष्टिपात करना प्रसंगानुकूल होगा जहाँ सशक्तिकरण एक संस्थात्मक सोच का प्रतिबिम्ब हैं। अधिक स्पष्ट तौर पर कहा जाए तो यहाँ सशक्तिकरण एक पारिभाषिक स्वरुप रखता हैं जो पर आधारित की अपेक्षा अधिक निष्पक्ष हैं। यह निश्चित करते हैं राज्यों और सरकारों के प्रमुखों द्वारा हस्तांतरित घोषणा निम्नांकित हैं–हम कि आर्थिक एवं सामाजिक दोनों ही शब्द वे नीति और निवेश हैं जो लोगों को अपनी क्षमताओं , संसाधनों एवं अवसरों को अत्यधिक बढ़ने की शक्ति प्रदान करते हैं। (संयुक्त राष्ट्र ,1995)

हम यह मानते हैं कि विकास एवं इसके प्रमुख श्रोत का मुख्य उद्देश्य लोगों विषेशकर महिलाओं को सशक्त करना ,उनकी क्षमताओं में वृद्धि करना हैं। सशक्तिकरण के लिए हमारे समाज के कल्याण और कार्य निर्धारण के निर्णय हेतु नियम बनाने ,प्रयोग करने और मूल्यांकन में लोगों की सहभागिता आवश्यक हैं।

(संयुक्त राष्ट्र ,1995) जैसा कि उक्त घोषणाओं से प्रामाणित हैं कि सर्वप्रथम ,सशक्तिकरण एकमात्र लक्ष्य नहीं हैं जिसे प्राप्त करने के लिए प्रयास किया जाता हैं। यह अपेक्षाकृत संबंधनात्मक हैं। इसका संबंध बाजार की शक्तियों और आर्थिक वैश्वीकरण से हैं। उपर्युक्त अर्थ में सशक्तिकरण वह कार्य हैं जिसमें उत्पादन एवं मैन्त्रिपूर्ण निवेश होना चाहिए।

द्वितीय, " क्षमताओं की वृद्धि " का सन्दर्भ हैं जिसका तात्पर्य हैं कि वृद्धि और विकास के लिए शक्ति और यह वांछित शक्ति हमारे समाज के कार्य और कल्याण के निर्धारण संबंधी निर्णय हेतु नियम बनाने ,उपयोग और मूल्यांकन में लोगों की पूर्ण सहभागिता का विश्वास दिलाने से प्राप्त की जा सकती हैं। समाज के एक दलित वर्ग जैसे– नारियों को मुक्त करना ,उनकी क्षमताओं में वृद्धि करना ,वांछित परिणाम का निर्धारण करने के लिए ,निःसंदेह अत्यंत निश्चयात्मक तथ्य हैं। परन्तु इस पर प्रतिस्पर्धा कायम हैं क्योंकि यह धारणा बनाता हैं और सशक्तिकरण के विविध पहलुओं को एकमुश्त सौदा से जोड़ता हैं। विविध पहलुओं को जोड़ने से तात्पर्य यह हैं कि कोई विश्लेषणात्मक संविधान बनाने वाली समूह विहीनताएँ नहीं हैं। जो सशक्तिकरण के लिए ढालू पत्थर होती हैं।

" क्षमताओं की वृद्धि " अति सरलीकृत एवं अति साधारणीकृत विचार के रूप में स्थापित होती हैं जो प्रश्नगत समस्या के वास्तविक स्वभाव की जड़ो को नजर अंदाज करता है। अतः यह भारत जैसे देश में नारी सशक्तिकरण के प्रति कम राजनैतिक महत्त्व का हो जाता हैं। जहाँ प्रतिबंध आदर्शवाद, सामाजिक–आर्थिक बनावट तथा राजनैतिक प्रकिर्या से स्वयं उत्पन्न होता हैं संक्षेप में , ऐतिहासिक दबाव जो स्त्री की क्षमताओं को सीमित करते हैं और उन्हें अपनी शक्ति की पूर्ण रूप से पहचान सीमा से पीछे ढकेलते हैं।

भारत का मामला.....

ऐतिहासिक विशलेषण

संदर्भगत प्रतिबंधो की बात करने एवं इतिहास का गहन अध्ययन करने पर यह पता चलेगा कि महिलाओं और शक्ति के क्षेत्र में उनकी भूमिका के प्रति इतिहास स्वयं उपेक्षात्मक रहा हैं। चाणक्य , जो एक भारतीय शिक्षक , दार्शनिक ,राजसी

सलाहकार थे और जिसने प्राचीन भारतीय राजनैतिक पुस्तक अर्थशास्त्र लिखी ,नारियों एवं उनकी भूमिका के विषय में अपना स्वयं का विचार रखते थे। चाणक्य दाव वाले आदमी जिन्होंने महान योगदान दिया और भारतीय इतिहास की धारा ही बदल दी, में अपनी पुस्तक " चानाक्यनीति " में स्त्रियो के प्रति अगणितआक्रामक सन्दर्भ प्रस्तुत किया हैं। उनके विचार हमें उन्हें नारी द्वेषी मानने के लिए बाध्य करते हैंजिनमें उन्होंने महिलाओं को बेढंगे तरीके से चित्रित किया हैं ,उनका मजाक उड़ाया हैं तथा उनको कमतर आकलन किया हैं चानाक्यनीति में कुछ विचार हैं जिनमें चाणक्य ने अच्छी एवं बुरी स्त्रियों तथा अकर्तव्य को स्वयं परिभाषित किया हैं। उनमें से कुछ विशलेषणके योग्य हैं–

प्रथम, अपनी चानाक्यनीति में उन्होंने नारियों के सात स्वाभाविक दोष बताये हैं। " असत्य , अविवेक , माया , मूर्खता , असोच , लोभ और क्रूरता " एक स्त्री के सात स्वाभाविक अवगुण होते हैं। जब एक आदमी किसी औरत के प्रति आकर्षित होता हैं तो वह विवेक रहित व्यवहार में फंस जाता है।

द्वितीय,उनका कथन हैं कि एक नारी का वास्तविक स्थान चारदीवारी के अंदर हैं। " राजा , ब्राहम्ण और तपस्वी योगी जो बाहर जाते हैं वे सम्मलित होते हैं , परन्तु जो भी स्त्री इधर–उधर घूमती हैं वह पूर्णरूप से बर्बाद हो जाती हैं। "

तिर्तीय, नारियों को सुरक्षित दूरी पर रखा जाना चाहिए और उनसे आदमियों का संपर्क भी एक सुरक्षित दूरी से होना चाहिए क्यूंकि एक स्त्री एक पुरुष की शक्ति को तत्काल लूट लेती हैं।

चतुर्थ, कभी किसी औरत की बात न सुनें क्यूंकि वे सभी प्रकार के दुष्टतापूर्ण युद्धों और पापपूर्ण कार्यों के लिए पूर्णरूप से उत्तरदायी होती हैं । कुशाग्र बुद्धि वाले लोग कभी स्त्री के सुझाव पर कार्य नहीं करते हैं क्यूंकि सभी घरेलू झगड़ो का कारण नारियां ही होती हैं।

पंचम, वह धोखापूर्ण तरीकों की स्वामिनी होती हैं। उदारता राजकुमारों से सीखनी चाहिए , वार्तालाप पंडित से और धोखापूर्ण तरीके नारियों से सीखनी चाहिए।

ष्ठम, उसे अपने पति की संम्पति पर कोई अधिकार नहीं होता हैं। " कोई एक पुत्र या कई पुत्रों वाली स्त्री अपनी संम्पति का स्वतंत्रता पूर्वक उपयोग करने के लिए स्वतंत्र नहीं होती हैं क्यूंकि उसकी संम्पति उसके पुत्र प्राप्त करेगें। यदि कोई स्त्री अपने पुत्रों की देखभाल के तर्क पर अपनी संम्पति पर अधिकार प्राप्त करने का प्रयास करेगीं तो उसे इसे उनके नाम करने की शपथ अवश्य दिलाई जायेगी। यदि किसी स्त्री के कई पुत्र हैं तो वह अपनी संम्पति उन्हीं शर्तो पर रख सकती हैं जिन शर्तो पर उसने अपने पुत्रों के लिए अपने पति से प्राप्त की हैं।

उनका कथन हैं कि एक अच्छी स्त्री का प्राप्त होना दुर्लभ हैं। केवल एक पवित्र,तीक्ष्ण बुद्धि वाली , गुणवती और मृदु भाषी स्त्री जो अपने पति के प्रति स्वामी भक्त बनी रहती हैं सचमुच उसके संरक्षण के योग्य होती हैं। वे सदैव कहते हैं कि एक नारी स्वामी भक्त होने में अयोग्य होती हैं। नारी का हृदय एक निष्ठ नहीं होता हैं वह बांटा होता हैं। जब वह एक आदमी से बात करती हैं तो दुसरे की और लोलुप नजरों से देखती हैं और तीसरे के प्रति अपने मन में उत्सुकता पूर्वक भाव रखती हैं।

उनका कथन हैं कि एक पति विहीन नारी अस्तित्व विहीन होती हैं। तुलसी दास ने भी रामचरित मानस में लिखा हैं ,

" जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद बिमल बिधु बदनु निहारें ॥

भावार्थ

जैसे बिना जीव के देह और बिना जल के नदी वैसे ही हे नाथ ! बिना पुरुष के स्त्री है। हे नाथ ! आपके साथ रहकर आपका शरद्–(पूर्णिमा) के निर्मल चन्द्रमा के समान मुख देखने से मुझे समस्त सुख प्राप्त होंगे।

" अभ्यास के बिना ज्ञान नष्ट हो जाता हैं ,अज्ञानता से मनुष्य का विनाश होता हैं और पति के बिना नारी का विनाश हो जाता हैं। कोई स्त्री दान करने से, सैकड़ो उपवास रखने से अथवा पवित्र जल पीने से उतना पवित्र नहीं हो जाती हैं जितना अपने पति के चरण धोकर उस पानी को पीने से पवित्र होती हैं। "

उनका कथन हैं कि नारी उचित प्रयोग की वस्तु होती हैं " एक मात्र उद्देश्य (स्त्री/नारी) तीन भिन्न तरीको से प्रकट होता हैं। जो आदमी आत्म सयंमी होता हैं उसके लिए नारी शव के समान होती हैं। समझदार व्यक्ति के लिए वह नारी प्रतीत होती हैं और कुत्तों के लिए मॉस का लोथड़ा प्रतीत होती हैं। जो अपने पति की सेवा माता की तरह ,दिन में उससे बहन की तरह और रात में उसका मनोरंजन एक वेश्या की तरह करती हैं।

अंत में उनका कथन हैं " स्त्रियों से सावधान रहो " स्त्रियों से सावधान रहो। " आग्ने ,पानी ,स्त्री ,मुर्दा ,सर्प और राजसी परिवार से सावधान रहो। ये घातक सिद्ध हो सकते हैं। चानाक्य को ऐसा प्रतीत होता या कि केवल स्त्रियाँ ही लोभ ,क्रूरता और अपवित्रता की प्रतीक होती हैं और वे झूठ बोल सकती हैं।

चानाक्यनीति में प्रस्तुत विचारों के विशलेषण से महिलाओं के प्रति चानाक्य का घ्रणित एवं पक्षपाती विचार से स्पष्ट होता हैं कि अपनी घृणा से उन्होंने नारी विरोधी पदार्थ को विकसित किया हैं और जीवन एवं मूल्यों को धारण करने में स्त्री के महत्व को पूर्णरूप से नजरअंदाज किया हैं। नारियों को कमतर करके उन्होंने नारी स्वभाव से वंशानुगत अपमानजनक विशेषताओं को जोड़ा हैं ,जैसे झूठ बोलना ,बिना विचारे कोई कार्य आरंम्भ करना ,साहस हीनता ,धोखेबाजी , मूर्खतापूर्णकार्य ,लोभ ,अपवित्रता और क्रूरता। उन्होंने स्त्रियों के लिए नियमबद्ध जीवन एवं व्यवहार बताए हैं जो पुरुषों के लिए उपयुक्त और उनके द्वारा प्रमाणित हैं। संक्षेप में ,ऐसी घृणास्पद ऐतिहासिक संरचनाओ से ,जिसमें महिलाओं के प्रति सम्मान का पूर्ण अभाव हैं ,सशक्तिकरण बहुत दूरस्थ स्वप्न होगा। नारियों की क्षमता वृद्धि की अपेक्षा उन्हें पूर्ण रूप से अक्षम बनाया जाना प्रतीत होता हैं।

स्वयं साहित्याकाश के सूर्य महाकवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी नारियों के आठ अवगुणों को अपने रामचरित मानस में व्यक्त किया हैं...

नारी सुभाऊ सत्य सब कहहीं, अवगुण आठ सदा उर रहहीं
साहस अनृत चपलता माया, भय अबिबेक अशौच अदाया

राष्ट्रवाद एवं महिलाए

कोरे सिद्धांतवादी अर्थ में भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति को सशक्त करने के प्रयास का बीज महत्वपूर्ण समाज सुधार को और संस्थाओ द्वारा उन्नसवी शताब्दी के आरम्भ में समाज सुधारएवं शिक्षा कायक्रमों के सूत्रपात के साथ बोया गया। भारतीय स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलनों का बीज भी समाज सुधार कार्यक्रमों से ही अंकुरित हुआ। राष्ट्रवाद का परिवर्तन महिलाओं के राजनैतिक सशक्तिकरण की दिशा में एक प्रयास था जिससे महिलाये पुरुषो के साथ अंग्रेजो के विरुद्ध राजनैतिक रूप से संगठित हुई। भारतीय समाज ने 1857 के जागरण के दौरान राजनैतिक आंदोलन में महिलओं की भगीदारी को देखा था। इस सम्पूर्ण समय में एक स्वतंत्र भारत की अपनी महत्वकांक्षा को पूर्ण करने के लिए शासक वर्ग की महिलाये

पुरुषो के साथ आगे आयी और राजनैतिक रंगभूमि में लोकप्रिय बन गयी जिनकी पूजा करने का दावा भारत वर्ष करता है कहा गया हैं –यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता :।

जिस साहस, प्रारब्ध और नेतृत्व का प्रदर्शन महिलाओं ने उपनिवेशवादी शासन से स्वतंत्रता के लिए आंदोलनों में किया उससे भारतीय समाज में उनका महत्व बहुत प्रभावित हुआ हैं।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के जन्म से लोग अंग्रेजों के विरुद्ध अपने कष्ठों को व्यक्त करने का केवल मंच ही नहीं पायें बल्कि यह वह समय था जब भारतियों में एक राजनैतिक जागरण विकसित हो रहा था। इस समय स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय संघर्ष में महिलाओं की भूमिका केवल अहिंसात्मक आन्दोलनों में सहभागिता के एक मात्र कार्य तक ही प्रतिबंधित नहीं थी ,अपितु हिंसात्मक/सशस्त्र क्रांति और सामाजिक परिवर्तन के लिए आन्दोलन भी सम्मिलित था। इस समय महिलाओं ने क्रन्तिकारी उत्साह भी विकसित कर लिया था।

स्वतंत्रता संग्राम में लोगो से सम्मिलित होने के लिए गाँधी जी के भावनात्मक आवहन पर एक बड़ी संख्या में स्त्रियों ने उनके सभी आंदोलनों और कार्यक्रमों में भाग लिया। उन्होंने नारिओं को राष्ट्रीय जीवन के सभी पहलुओं में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। उनके उपदेश अहिंसा, आत्मत्याग और प्रेम पर केन्द्रित थे –ये सभी विशेषताएँ गाँधी जी द्वारा महिलाओं से जोड़ी गयी थी। स्वतंत्रता संग्राम नारियों को स्वतंत्र करने का साधन बन गया।

जो भी हो, नारी सशक्तिकरण की इस अवधि का दूसरा पहलू राष्ट्रवाद के इतिहास में केवल सहयोगात्मक भूमिका में नारियों का दृष्टिगोचर होना हैं। इस विशिष्ट स्वरूप का विशलेषण करते हुए विद्युत चक्रवर्ती कहतें हैं,

" यदपि गाँधी जी ने जीवन के सभी कार्यों में सहभागी होने के लिए प्रोत्साहित किया महिलाओं एवं राष्ट्रवादी आन्दोलनों में उनकी भूमिका के विलय में उनके विचार अस्पष्ट (गुप्त) थे। " उनके अनुसार, महिलाओं के सम्बन्ध में उनका आदर्शवाद समसामयिक राजनैतिक घटनाओं और उनके प्रति (गाँधी जी की) प्रतिक्रिया में संलिप्तता पर निर्भरता इतिहासिक आन्दोलन के वे एक महत्वपूर्ण पात्र थे और लिंग से सम्बंधित उनके विचार उसी के अनुरूप थे। गाँधी जी स्त्रियों की शक्ति पहचानतें थे और स्वाधीनता के कार्य के लिए इसे संरक्षित रखते थे। उन्होंने जाति ,वर्ग और लिंग में अन्याय के मूल्य पर स्वतंत्रता संग्राम के नाम पर देश को एकता बद्ध किया। गाँधी जी के विचार से महिलाओं की भूमिका पुरुषों की भूमिका की पूरक थी। उनका विचार था की पुरुष एवं स्त्रियाँ सामान पद की हैं परन्तु वे सामान नहीं है। एक दुसरे के पूरक होकर वे अतुलनीय जोड़ा हैं ताकि एक के बिना दुसरे का महत्व नहीं सोचा जा सकता हैं। एक विवाहित युग्म के वाह्य क्रियाकलापों में पुरुष सर्वश्रेष्ठ हैं, और वस्तुओं की उपयुक्तता में उसकों उसका अधिक ज्ञान रखना चाहिये।

दूसरी ओर ,गृह जीवन पूर्ण रूप से नारियों के क्षेत्र में होता हैं अतः गृह कार्यों में ,बच्चों के पालन पोषण एवं शिक्षा में महिलाओं का ज्ञान अधिक आवश्य होना चाहियें। गाँधी जी का यह भी विश्वास था की चूँकि नारियाँ " स्वभाव से प्रतिबंधित " होती हैं उनके अवकाश अवश्य भिन्न होने चाहिए क्योंकि वह दब्बू होती हैं ,वह उधोगी होता है वह विशेष रूप से गृहस्वामिनी होती हैं,वह जीविकोपार्जन कर्ता होता हैं। जीवन सम्बन्धी उनके गुणों को पूरक बताते हुए गाँधी जी इस प्रकार तर्क करते थे कि वे अपने श्रम को विभक्त करके अच्छे गृह संचालक बन जातें हैं और एक अच्छी माता पूर्ण रूप से गृह कार्य और बच्चो की देखभाल में समर्पित कर पाती हैं। परन्तु , जब पति–पत्नी दोनों को रख–रखाव के लिए ही श्रम करना पड़ता हैं ,तो देश का पतन होता हैं। उसकी पूंजी पर यह दिवालियापन के जीवन

की भांति होता हैं। नारी के प्रति गाँधी जी की परिकल्पना उनकी इस धारणा से शासित हैं नारी को क्या होना चाहिये। इस प्रकार उन्होंने उसके लिए माता एवं पत्नी के रूप में समाज ने एक विशेष भूमिका बनाई और उसे गृह कार्य की प्राथमिक भूमिका दी। उनकी स्पष्ट रूप से विशिष्ट स्थिति से जोड़कर महिलाओं के योगदान को राष्ट्रवाद की सुपरिभाषित कार्य सूची में (महिलाओं की) स्थिति को सुर में सुर मिलाने के लिए इस तरीके से व्यक्त किया गया।

गाँधी जी ने सूत काटना महिलाओं का सिमित कार्य क्षेत्र विशेष रूप से बताया। उनका तर्क था कि चूँकि सूत काटना मुख्य रूप से मंद और तुलनात्मक रूप से शांत प्रक्रिया हैं ,यह विशेष रूप से महिलाओ के लिए बना रहेगा। चूँकि नारियाँ मानवता की भलाई के लिए चुपचाप कष्ट सहती हैं ,वे अहिंसा की अवतार हैं जिसका अर्थ हैं कष्ट सहन करने हेतु अनंत प्रेम एवं अनंत क्षमता ,केवल स्त्रियाँ ,पुरुष की माता हैं इस क्षमताका प्रदर्शन कर सकती हैं अधिकतम मात्रा में कर सकती हैं।

गाँधी जी लैंगिक प्रश्न ,जो राष्ट्रवादी आन्दोलन में उनकी भूमिका पर भी निर्भर था पर आगे कदम बढ़ने में अस्थिर ,अनिश्चयी, और भाव तथा अर्थ में सूक्ष्म अंतर समझने वाले थे। अपनी आत्मकथा " सत्य के मेरे प्रयोग " में अपने व्यक्तिगत जीवन का सन्दर्भ देते हुए उन्होंने कष्ठों को सहन करने हेतु सामर्थ्य कि प्रतिभूर्ती के रूप में महिलाओ का सम्मान किया। इस सम्बन्ध में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि एक ओर महिलाओं के सशक्त स्वरुप को राजनितिक मंच पर आगे लाने में सहयोग करके ,भारतीय इतिहास में राष्ट्रवाद की बदलती स्थिति में स्त्रियों को युगों पुराने प्रतिबंधों से मुक्त और अलग करने का विचार था। दूसरी ओर उनके वंशानुगत नारी सुलभ गुणों से उनको युक्त करना था। जबकि एक ओर सार्वजनिक/राजनैतिक क्षेत्र उनके लिए खुला था तो दूसरी ओर इसका उद्देश्य उन्हें नियंत्रण करना एवं दिशा निर्देश देना था क्योंकि वे निश्चित अवकाश और वातावरण के लिए विशेष रूप से थी।

इस प्रकार राष्ट्र–राज्य की अभिन्नता की रक्षा के लिए राष्ट्रवादी राजनीति के पीछे के विचार से महिलाओं की भूमिका को बाहर प्रकट किया गया ,राजनीती में महिलाओं की लडाकू हिस्सेदारी को स्वीकार किया गया ,परन्तु वे उसी समय निर्णायक समूह में अनुपस्थित रही। इस नवीन राजनैतिक पात्र के रूप में उन्होंने पहचान प्राप्त की। निर्णायक समूहों से अपनी अनुपस्थिति पर न तो ध्यान दिया और न ही ऐसी किसी मांग पर विचार किया उदाहरणार्थ, 1970 के दसक से पूर्व राजनैतिक क्षेत्र में प्राप्त इस विशेष नवीन स्तर के कारण भारत में महिलाओं के स्तर पर बनी समिति ने महिलाओं के आंदोलन सम्बन्धी क्रियाकलापों में लोकसभा में महिलाओं के आरक्षण को खारिज कर दिया। 1990 के दसक के उत्तरार्ध की अवधि में ही महिला आन्दोलन के प्रतिनिधियों ने ऐसे आरक्षण की मांग की। इस बनावटी परिवर्तन का उद्देश्य घटनाओं की धरा में निश्चित परिवर्तन को करना हैं। निवेदिता मेनन इन विकासो का परिक्षण निम्नांकित रूप में करती हैं–

किसी को भी राष्ट्रीय अभिन्नता के तर्क की चुनौतियों से सरोकार रखना था। 1970 के दशक के मध्य स्वतंत्रता के उपरांत की अवधि के गणमान्य व्यक्तियों की वैधानिक शक्ति में क्षय करना प्रारम्भ कर दिया था और प्रश्न उठने लगे थे कि राष्ट्र–राज्य की अभिन्नता से किसके स्वार्थ की पूर्ति हो रही थी। इससे समाज के हर वर्ग में युद्ध–प्रियता के नवीनीकरण का प्रादुर्भाव हुआ क्योंकि– " भारतीय राष्ट्रवाद " के वंशानुगत विचार को 1990 के दशक मध्य तक विभिन्न क्षेत्रीय आन्दोलनों से चुनौती मिल रहीं थी। सारांश के रूप में ,जाति और समुदायों के

राजनैतिक प्रतिनिधित्व की बात करने के लिए नितान्त आवश्यकता इस अवधि की एक उपलब्धि थी।

स्थान/परिवर्तन विकास यह था कि महिलायें राजनीती में एक विशेष शक्ति के रूप में संलिप्त हो चूँकि थी। वे उस भ्रष्टाचार और मूलवृद्धि के विरूद्ध आन्दोलनों में सबसे आगे थी जो आपातकाल लागु होने के पहले था। 1980 के दशक में स्वतंत्र नारी समूहों के शाब्दिक और दृष्य अभ्युदय को देखा जिसने स्त्रियों के विरुद्ध दहेज ,दुष्कर्म ,हिंसा जैसे सार्वजनिक कार्य सूचि में नारी सम्मान अधिकारवादी तर्को दृष्टता पूर्वक रखा। इस समय बिन्दु के आस–पास यह स्पष्ट था कि महिलाएं प्रतिनिधि–समूहों के अधीन प्रतिनिधि थी और उन्हें काल्पनिक रूप के बजाये प्रयोगात्मक रूप में सशक्त बनाने की आवश्यकता महसूस की गयी।

" स्वतंत्रता की बेटियों " के रूप में, उस पीढ़ी से सम्बन्धित विशेष प्रतिनिधित्व के प्रति आलोचनात्मक थी परन्तु घटनाओं की निरंतर प्रतिक्रिया के साथ उन्होंने, " राष्ट्रनिर्माण " के अपने विचार को मौलिक रूप से बदलता हुआ पाया। इसका तत्पर्य है कि, " स्वतंत्रता की बेटियों " के रूप में वे " अव्यवहारिक नागरिकता और अधिकार के लिए अवधारणा " की सीमा मात्र में थी। वह अंतर जीव विज्ञानात्मक रूप से नहीं बल्कि योग्यता एवं सामर्थ्य के अर्थ में स्वभावतः अन्धा था। उनकी भिन्नता पर आधारित स्वीकृति और धन्यवाद उस समय की आवश्यकता थी। सशक्तिकरण को भिन्न प्रकाश और विशेष प्रचलन में देखा जाना था जो अव्यवहारिक प्रशंसा से परे होता।

समसामयिक राजनीति और " कैसे महिलाएँ राजनीति में पूरी ताकत झोंक देती हैं " का परिदृश्य

सशक्तिकरण एवं क्षमता वृद्धि की प्रक्रिया के प्रति लम्बे सम्बन्धी संघर्षों से अब भी महिलाओं की भूमिका पर एक प्रश्न उठता हैं जो अनुत्तरित हैं। अधिक विशेष रूप से इस प्रश्न का उत्तर वंछित हैं कि भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका क्या हैं ? इसका उत्तर है कि बड़े और छोटे दोनों ओर भारत के सन्दर्भ में राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों स्टार की राजनीती में अंतर हैं। संयुक्त राष्ट्र के 2008 में राजनीती में महिलाओं के सर्वेक्षण के अनुसार लोकसभा में महिलाओं की संख्या (६.१%) निम्नतम के चौथे पायदान पर है (चौदहवीं लोकसभा का चुनाव) खण्डा (५६.७%) ,दक्षिण अफ्रीका (४४.५%), मोंजम्बिक (३४.८%), भारत से अधिक अच्छी स्थिति में हैं। पंद्रहवीं लोकसभा के चुनाओं में उनकी संख्या का आकड़ा 53% था जिससे लोक सभा में उनकी भागीदारी का प्रतिशत बढ़ गया १०.७% हो गया। 1998 से महिलाओं के आरक्षण सबंधी 84 वां संविधान–संसोधन बिल में महिलाओं की भागीदारी पर बहुत बहस और शोर–गुल भी हुआ। इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण विश्लेषण भारतीय राजनीती की समस्या हैं जो समय–समय पर सैधांतिक रूप में डेरा का प्रबंधन तो करती हैं, परन्तु पर्याप्त रूप में महिलाओं को ऐसी नीतियों में प्रयोग सिद्ध रूप में सम्मिलित करने में असफल रहती हैं। यदि, "गतिशीलता का नमूना", "सशक्तिकरण के आदर्श " के प्रति एक महत्वपूर्ण योगदानात्मक परिवर्तन के रूप में देखा जाना है, तो इस तथ्य से यह व्यक्त होगा की सहभागिता के स्तर पर उच्चतम राजनैतिक दलों द्वारा सहभागिता हेतु प्रोत्साहन निम्न स्तर पर हैं।

उदाहराणार्थ– कांग्रेस पार्टी, जिसका नेतृत्व एक महिला करती हैं और जिसने लगातार दो दसक तक शासन किया और महिला–आरक्षण पर बल देती रही, गत चुनाओं में 10% महिलाओं को प्रत्याशी बनाया। भारतीय जनता पार्टी के लिए

महिला प्रत्याशियों का अनुपात उससे भी निम्नतर 7% है

ऐसा नहीं हैं कि महिलाओं को राजनिति में बड़ा कार्य नही मिलता हैं, परन्तु अधिकांशतः प्रायः वे दल के महिला मोर्चा हेतु बहिष्कृत कर दी जाती हैं और जो महिलाओं की समस्यायें जैसे दहेज, दुष्कर्म, आदि प्रकार के मामले दिखाई देते है, तथा अधिक सामान्य विचार की बातेजैसे मूल्य वृद्धि जिससे गृहणियां अधिक प्रभावित होतीं हैं की ओर महिलाओं का ध्यान केन्द्रित कर दिया जाता है।

उनकी राजनैतिक भूमिका की एक दूसरी धारणा या विशेषता राजनितिक मंच पर राजवंशीय और वातोंन्मादी समूह में उनका वर्गीकरण हैं। यह विशेषता राजनैतिक दलों के प्रमुखों के रूप में महत्व पूर्ण है जो राजवंशीय समूह से सम्बंधित है वे पारिवारिक बंधन में होती है और परिवार की संता के आधार पर, जिससे उनकी पहचान होती है, महिलाओं के सशक्त वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है।

दुसरे समूह में, वातोंमादी समूह में पारिवारिक उत्तराधिकार वाली नारिया नहीं होती है, किन्तु उनके व्यवहार में भावनात्मक प्रदर्शन से या तो सकारात्मक या संख्या बल के कारण राजनीती में उनकी पहचान बनती है राजनैतिक पहचान के लिए उन्हें सहयोग, सहानुभूति, समझदारी, या बड़े समुदाय के प्रति सम्बन्ध की भावना उत्पन्न करती हैं। यदि अधिक प्रभावोंत्पदक राजवंशीय हैं उपहार के अपवाद को निकाल दे तो हम पाएंगे की अधिकतर स्त्रियाँ दल के पुरोहित तंत्र में उत्थान करना कठिन पायीं है और उन्होंने स्पष्ट नेतृत्व प्राप्त करने का प्रबंध तभी किया हैं जब पार्टी को तोडा हैं और अपना नया दल बनया है (परन्तु उदहारण पुनः बहुत कम होंगे)। एक दूसरी विशेषता जो नारियों की राजनितिक भूमिका में सर्वोपरि प्रतीत होती है वह यह हैं की जब एक बार ये महिलाये नेता के रूप में प्रतिस्थापित हो जाती तो नेता के निर्णयों की स्वीकृति दल के पद और पंक्ति (बड़े पैमाने पर पुरुष) द्वारा प्रश्नरहित होती है। इससे हमारे समक्ष एक बड़ा प्रश्न उठता हैं– क्या इसमें अत्यधिक अनुरूपता है की जो महिलाये राजनैतिक दलों का प्रमुख हैं वे वास्तव में अच्छा कार्य करती हैं। दूसरा महत्वपूर्ण प्रश्न है–

भारत में नारी राजनीतिज्ञों का भविष्य क्या है ?

वास्तव में, हमारा प्रजातंत्र अपने कार्य क्षेत्र में महिलाओं को सम्मिलित करने में असफल रहा है ऐसा विशेष रूप से गाँधीवादी उत्तरदान के कारण है जिसने राजनीती में महिलाओं की भूमिका आदेशात्मक शक्ति के अपेक्षा आत्मबलिदान के रूप में देखा था दूसरा कारण राजनीती में व्याप्त भ्रष्टाचार और अपराधीकरण हैं। यह भारत में राजनैतिक नारी सशक्तिकरण के संभाषण का एक प्रकार हैं जहा नियम एक तरफ पैत्रिक मूल्यों द्वारा तथा दूसरी ओर अपने शब्दों और बातोंन्माद का प्रदर्शन करने वाली शर्तों पर राजनीती कहलाने वाले कार्य के माध्यम से उस नियम पर शासन करने के लिए नारियों द्वारा संघर्ष से शासित है।

स्थानीय स्तर की (सम्पूर्ण) राजनीति में, विशेष रूप से 1992 में 73 वे संसोधन प्रस्ताव के पारित होने से जिसमे महिलाओं के लिए एक तिहाई सीटो का निर्धारण हुआ, प्रतिनिधित्व लगभग 50% हैं।

सम्पूर्ण स्तर पर प्रजातांत्रिक संसाधनों के निर्माण में भारतीय महिलाओं की भागीदारी के इतिहास में 73 वां संविधान एक्ट एक उल्लेखनीय कदम हैं। इस एक्ट का सम्पूर्ण स्तर पर स्थानीय शासन (शहरी और ग्रामीण) में महिलाओं को 33% आरक्षण उपलब्ध कराकर विकास की प्रक्रिया में प्रतिनिधित्व एक अच्छा उद्देश्य हैं।

इससे महिलाओं के लिए राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश का एक अच्छा अवसर उपलब्ध होगा। एक महत्वपूर्ण धारणा बनती हैं कि इससे निर्णय करने में लैंगिक प्रतिनिधित्व का महत्व समझ में आयेगा।

यद्यपि कि संस्थात्मक रूप से लिंग, जाति, वर्ग की भूमिकाओं और उत्तराधिकार के समापन के लिए स्थानीय समूहों (पंचायतों) में आरक्षण उपलब्ध किया गया हैं, परंतु यह एक लंबी एवं कठिन प्रक्रिया हैं। महिलाएँ केवल प्रतिनिधि सदस्य से अधिक होने के अपने अधिकार के लिए ही संघर्ष नहीं कर रहीं हैं, बल्कि वे लैंगिक श्रम दृविभाजन, निरक्षरता, परिवर्तनीयता के निम्नि स्तर, एकान्तता प्रशिक्षण और सुचना के अभाव के संसाधनों को तोड़ने के लिए भी संघर्षरत हैं। सशक्त निर्माण के सहयोग के अभाव में ये व्यवधान अस्तित्व में बने रहते हैं। गृह कार्य में महिलाओं का निम्न स्तरीय आत्मसम्मान तथा स्थानीय राजनीति में उनकी नयी भूमिकाः जहाँ उनसे नेता के रूप में कार्य करने की आशा की जाती हैं, घर पर और स्थानीय सरकार में महिलाओं की भूमिका के बीच विरोध उत्पन्न करता हैं। नया नेतृत्व जो स्थानीय सरकार के विविध स्तरों पर दृष्टिगोचर हुआ हैं परम्परागत सशक्त ढांचा के प्रति एक गंभीर चुनौती के रूप में आकार धारण किया हुआ प्रतीत होता हैं परन्तु इससे संबंधित मुख्य समस्या हैं कि क्या स्थानीय सरकारी संस्थानों में प्रतिनिधित्व ने लिंगा धारित सिद्धांतो और सामाजिक ढांचा से कोई महत्वपूर्ण दूरी बनाई हैं। क्या ये प्रजातांत्रिक निर्णय करने वाली संस्थाएं किसी ठोस प्रजातंत्रीकरण तक से ली गयी हैं ? क्या इन् संवैधानिक निर्माणों, विशेष रूप से राजनीति में महिलाओं की भागीदारी और नेतृत्व, की पहचान परम्परागत सशक्त ढांचा द्वारा स्वीकार की गयीं हैं ? ये कुछ बुद्धिमत्तापूर्ण विचार हैं जिन्हें सशक्तिकरण के औचित्य को मापने के लिए महत्व दिया जाना हैं।

निष्कर्ष

नारी सशक्तिकरण की बात करते हुए कहा जा सकता हैं कि राजनैतिक भागीदारी निर्णय करने को बढ़ाने के लिए राजनैतिक प्रक्रिया में नारी–सशक्तिकरण को निश्चित करने का एक प्रमुख तरीका हैं। परंतु यह भागीदारी मतदान और सार्वजनिक कार्यालयों के लिए चुनाव जैसी चुनावी राजनीति से बहुत परे हैं। संस्थात्मक, निर्देशात्मक और बाह्य शक्तियों, जो क्षमता–वृद्धि के वर्तमान मशीनीकरण हैं, ने हीनभावना की स्वचेतना का पोषण करने में अधिक योगदान दिया हैं। वास्तविक सशक्तिकरण एक योग्यकारी पर्यावरण के निर्माण से प्रारम्भ होता हैं। यह सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, वैधानिक और आर्थिक पर्यावरण हैं जो स्वानुभूति की भावना को विकसित करना चाहता हैं। क्षमता वृद्धि और सशक्तिकरण को " अपने आप में एक विचार " की तरह देखा जाना हैं।

सन्दर्भ

- भट्टाचार्य, मालिनी. 2008. ऑन दा कांसेप्ट ऑफ एम्पोवेर्मेंट. विमेंस स्टडीज इन इंडिया(पेंगुइन बुक्स).
- जैन, आर.पी. 2013 , चानाक्यनीति (प्रभात प्रकाशन).
- आंबेडकर, एन, शैलजा, 2005 ,वीमेन एम्पोवेर्मेंट एंड पंचायती राज (एबीडी पब्लिशर्स).
- मजुमदार, विना ,1997. हिस्टोरिकल साउंडइंग. सेमिनार 457, 1419.
- बनर्जी, के, नारायण, 2008. दी एनाब्लिंग प्रोसेस ऑफ एम्पोवेर्मेंट.विमेंस स्टडीज इन इंडिया(पेंगुइन बुक्स).

- यूनाइटेड नेशनस, 1995 , डिक्लेरेशन्स ऑफ दा वर्ल्ड समिट फॉर सोशल डेवलपमेंट, जिनेवाय यूनाइटेड नेशनस.
- चक्रबर्ती, बिद्युत, 2006 सोशल एंड पोलिटिकल थॉट ऑफ.
- महात्मा गाँधीः वॉल्यूम 43 ऑफ रौतलेद्गे स्टडीज इन सोशल एंड पोलिटिकल थॉट(न्यू यार्क ; टेलर एंड फ्रांसिस)
- कोन्नोर, ओ,करेन, 2010.जेंडर एंड विमेंस लीडरशिपः ए रिफरेन्स हैंडबुक.(न्यू डेल्हीःसेज पब्लिकेशनस)